



साहित्यिक विमर्श- लेख

अल्पना मिश्र की कहानियों से झांकता दर्द-‘आंचल में दूध और आंखों में पानी’

-डॉ. मीनाक्षी जयप्रकाश सिंह

ढिबरी थीं दीदी तुम
हमारे बचपन की
अचार का तलछट तेल
अपनी कपास की बाती में सोखकर
जलती रहीं।

हमारे समाज के मध्यवर्गीय घरों की दीदियां अक्सर इसी परिभाषा के कठघरे में सीमित संकुचित-सी दिखाई देती हैं। ‘दीदी’ की ऐसी परिभाषा का होना - जहाँ बड़े होने की वजह से हर अनुभव, जीवन की हर मीठी कड़वी परिस्थितियों से ‘दीदी’ को पहले गुजरना पड़ता है वह भी अकेले- वास्तव में लेखिका के अनुसार स्त्रियों की वैयक्तिक नहीं अपितु सामाजिक और राजनीतिक स्थितियां हैं। चंचल छोटी बहन जो माता-पिता के अनुशासन या नजर के दायरे से कमोबेश बड़ी बहन की अपेक्षा मुक्त रहती हैं क्योंकि कसाव झेल चुकी दीदी पर अपना सब कुछ उड़ेलकर माता-पिता दूसरे बच्चे में लगभग निश्चित से हो जाते हैं-कहने का तात्पर्य है कि जितने भी प्रयोग, चिन्ता, अनुशासन, भय और कड़ाई होती है, माता पिता जवानी के जोश में सब कुछ बड़े के ऊपर आजमा लेते हैं और दूसरे तीसरे तक आते-आते उनका खुद का उत्साह इतना क्षीण पड़ता जाता है कि छोटे हमेशा के लिए बड़े की अपेक्षा अमरता का वरदान पा जाते हैं। अल्पना मिश्र की इस कहानी का कथ्य भी

कुछ इसी प्रकार के घरों की भारतीय दीदी का है जिसे अक्सर बड़े होने की वजह से खुद के अलावा छोटे की

अतिरिक्त जिम्मेदारी का निर्वाह करना पड़ता है, जिसे अपने बचपने को भूलकर बड़ेपन का स्वांग भरना पड़ता है क्योंकि हमारे यहां माना जाता है कि बड़ों को देखकर ही छोटे सीखते हैं, अतः बड़े होने के नाते अभिभावकत्व की जिम्मेदारी का निर्वाह करते वक्त हमें बचपने का त्याग करने की जरूरत होती है। इसी कोशिश में ‘सुनयना! तेरे नैन बड़े बेचैन’ की दीदी यद्यपि बच्ची है, ग्यारहवीं की छात्रा है तथापि वह ‘दीदी’ है और इसलिए अपनी छोटी बहन के लिए सदैव एक रहस्य-सी है। छोटी को तब एहसास होता है जब वह भी बहुत बड़ी हो जाती है कि दीदी भी बहुत जिद्दी थी, समझदार थी, उनके अपने शौक थे, वे बहुत खूबसूरत थीं, वे गाना गाती थीं और गीत गाते वक्त इतनी तन्मय हो सकती थीं कि बहुत खूबसूरत और बेचैन आंखों से पूरित प्रतीत होती थीं। परन्तु उसे तभी यह भी एहसास होता है कि सिर्फ दीदी होने की वजह से ही क्यों उसकी दीदी का समस्त ‘स्व’



दीदीपने के आवरण से हमेशा ढंका-सा रहता था। यह बड़ा होना उनके अस्तित्व को ढंक लेता था।

कहानी में छोटी बहन जो हमेशा अपनी बड़ी दीदी के अनुशासन के तहत पली-बढ़ी, उम्र के एक विचित्र पड़ाव पर आकर -जब वह खुद को दीदी के अनुभवों के समकक्ष पाती है- अब मानती है कि बड़ा होना स्त्री को किस कदर खुद को ही टालते रहने का सबब बनता जाता है-- लेखिका दीदी को पत्र लिखते हुए अपनी स्थितियां साझा करती है-“हमें अपने को स्थगित करना छोड़ना होगा, बड़ी खराब आदत है हमारी। अपने को टालते हैं, अपने आप को मारते हैं इसी तरह। आप ही कहेंगी, मैं जानती हूं। मेरे कारण भी सब घरेलू कहे जाएंगे। जानती हूं। हालांकि मैं इसे घरेलू नहीं मानती, निहायत राजनीतिक और सामाजिक मानती हूं।“

अल्पना मिश्र की कहानी डायरी है या कहीं उनकी डायरी ही कहानियां हैं। कहानी कहते-कहते ही अचानक कहानी रुक जाती है फिर अभिव्यक्ति के कुछ विशेष चिह्न या कोई नई संज्ञा, सर्वनाम--और फिर कहानी--कभी कभी भ्रम होने लगता है कि यह एक ही कहानी है या नहीं। उनकी कहानियों के शीर्षक हटा दिए जाएं और पात्रों के नाम गुमा दिए जाएं --फिर सारी कहानियों को फेंट दिया जाए तो यह अनुमान लगाना लगभग असम्भव हो जाएगा कि कौन सी कहानी का भाग कौन-सा है। इसलिए बड़ी विश्वस्तता के साथ कहा जा सकता है कि अल्पना जी की कहानियां एक ही

कोलाज के कई छोटे-छोटे खण्ड हैं- वह एक ही उपन्यास के अलग अलग भाग के समान है--और इसलिए वे कहानियां कम और किसी एक मुख्य कथा के खण्ड ज्यादा लगते हैं। सम्वेदना के स्तर पर समान अनुभूति प्रदान करने वाले, एक दूसरे से जुड़े-गुंथे-से-- जहां कुल मिलाकर जो तैर जाता है वह यह कि सम्पूर्ण कथा में चार-पांच भाई बहन हैं, मध्यवर्गीय आर्थिक विपन्नता, बड़ी दीदी के कन्धों पर अनुशासन की बन्दूक से लेकर छोटे भाई बहनों तक की जिम्मेदारी, ससुराल की भूमिका में कभी चालाक बूढ़ी औरत या कहीं 'बेतरतीब' की जगदीश्वरी देवी, पति की भूमिका में कभी मेजर कुमार और कभी भगवत शरण जी- एक दो प्रेमी भी हैं कहीं कहीं पर वे भी असमर्थ और निष्क्रिय, जोरदार और चमत्कारिक जगहों पर एण्ट्री मारने वाली पड़ोस की गुप्ता आण्टी भी हैं--परन्तु भूमिकाएं सबकी एक-सी--मानो एक ही कथा के कई टुकड़े अलग अलग नाम से प्रस्तुत किए गए हों-- एक ही जिन्दगी की अलग-अलग घटनाएं।

अल्पना मिश्र की प्रायः सभी कहानियों में पुरुष अधिकतर निष्क्रिय हैं क्योंकि अल्पना जी की स्त्रियां विरोध नहीं करतीं, तथापि पुरुष साथ न होने या दूर होने के बावजूद लगातार स्त्री के मन पर शासन करता है। वह कहीं नहीं दिखता किन्तु फिर भी सर्वत्र व्याप्त है-कहीं अपने होने के एहसास के साथ, कहीं न होने के भय के रूप में और कहीं सम्पूर्ण हो रहे के कारण और हो सकने वाले परिणामों की चर्चा के रूप में। जहां है वहां भी वह



सर्वथा शक्की मिजाज, चिड़चिड़ा, स्त्री सत्ता पर प्रश्न उठाने वाला और पुरुष वर्ग की निरंकुशता का प्रतिनिधि बनकर ही आता है। कहीं भी पुरुष का सहकारी उदार रूप नजर नहीं आता। वह मात्र स्त्री के तमाम कष्टों का कारण और स्त्री की जिन्दगी के तमाम प्रश्नों की पृष्ठभूमि में रहता है और इसलिए वह यहां हमेशा एक प्रश्न बनकर ही उभरता है परन्तु यह प्रश्न उसकी सत्ता से जुड़ा होने के बावजूद भी उसकी सत्ता से नहीं अपितु स्त्री की सत्ता से जुड़ा होता है। उसकी निर्लिप्तता भी उसकी निरंकुशता का ही पर्दाफाश करती है। 'पुरुष है तो क्या है, 'पुरुष न हो तो क्या हो' और 'पुरुष हो और नीड़', 'इस जहान में हम', 'छावनी में घर', 'उपस्थिति', 'भय' आदि कहानियों में उपस्थित पुरुषों की तरह हो तो क्या हो? हर जगह वह प्रश्न बनकर है, पर है। हर जगह वह चुप है, उसे शब्द नहीं मिले हैं कहने को फिर भी वास्तव में वही व्याप्त है और जिसकी व्याप्तता से आशंकित और त्रस्त स्त्री छटपटाती-सी अपने अन्तर्मन में एकाएक वाचाल हो उठी है। इनकी कहानियों में कुछ ऐसी ही विक्षमता व्याप्त है। अधिकार का ज्ञान है इसलिए पुरुष मौन है परन्तु गुलामी की सतत जंजीरों में जकड़ा स्त्री का अस्तित्व बेचैन है, विक्षिप्त है, डिप्रेस्ड है।

वह है-है क्यों नहीं -है तभी तो अल्पना जी की अधिकतर स्त्री पात्र गर्भवती है, वह गर्भ की यन्त्रणा झेल रही है, गर्भपात की यन्त्रणा झेल रही है और गर्भपात सह भी रही है। परन्तु मेरा मानना है कि उनकी हर स्त्री में इतना दर्द है कि वे सोचती हैं कि अगर गर्भ का पात हो

सकता है तो फिर दर्द का पात क्यों नहीं। पर नहीं होता। उनकी कहानियां सिद्ध करती हैं की स्त्री की नियति में सिर्फ दर्द है- "अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी। आंचल में है दूध और आंखों में पानी।" अल्पना जी ने स्त्री के मातृत्व कर्म से सम्बन्धित लगभग हर अवस्था का चित्रण किया है वह भी इतनी खूबसूरती से कि पढ़ते-पढ़ते मानो वह दर्द हमारे भीतर भर जाता है, शरीर में जुगुप्सा उत्पन्न हो जाती है और एक तरह के गर्भपात का भ्रम भी। मानो वह दर्द बयां नहीं किया जा रहा बल्कि सामने जिसे सहा जा रहा है- एक-एक पल की सजीव अनुभूति और उससे भी दर्द भरी सजीव अभिव्यक्ति। स्त्री जीवन का उद्देश्य है सृजना। कुदरत ने और समाज ने भी मानो पहले से ही निर्धारित कर रखा है कि स्त्री को मातृत्व कर्म को ही अपना प्रमुख उद्देश्य मानकर चलना है, उसे ब्याहकर दूसरे घर जाना है, पर बड़ी विडम्बना है कि इस एक गुरु कर्म के प्रतिपादन में बंधने के लिए वह जीवन भर के लिए कठघरे में खड़ी कर दी जाती है। जीवन भर का उसका उद्देश्य सिर्फ इस एक मातृत्व के तैयारी के लिए धरा का धरा रह जाता है और वह कछुए की भांति इसी कवच के भीतर सिमटी रह जाती है। मातृत्व कर्म है और इसलिए उसे तब तक खुद को बचाकर सुरक्षित रखना है जब तक कि उसके लिए कोई एक लड़का नहीं मिल जाता- समाज और परिवार द्वारा तय किया गया एक सर्व स्वीकृत लड़का। और इसके लिए खूब तैयारियां की जाती हैं। बचपन से तोते की तरह रटाया जाता है--'अच्छी लड़कियों प्रेम से बचो! प्रेम एक छिछली भावुकता है, जो भविष्य में दुर्गति का



कारण बनेगी। कोई सहारा नहीं देगा लड़कियों! इसलिए पढ़ो-लिखो और अपने भीतर के सहज आकर्षण को दबा डालो। लड़कियों! ...जब तक माँ-बाप कहें, पढ़ो, जब पढ़ाई बंद करने को कहें, बंद करो। जिसके साथ कहें, उसी के साथ जाओ। जिससे प्रेम करने को कहें, उसी से प्रेम करो! ऐसा करने से तुम्हारे द्वारा किए गए प्रेम की जिम्मेदारी उनकी होगी और इस प्रेम में यदि काँटे चुभेंगे, तो इसका प्रायश्चित्त भी वही करेंगे यानी तुम्हारे माँ-बापा, और फिर समय आने पर शुरू होता है दर्द का सिलसिला। जिस दर्द से बचने के लिए जिन्दगी भर रटे-रटाए गए अब वही दर्द जिन्दगी भर के लिए पल्ले पड़ जाता है। इसकी तैयारी में सबसे पहले स्त्री की आत्मा पर जो अत्याचार होता है वह है उसे स्त्री से शोपीस में बदल देना। उसकी पसंद-नापसंद, उसके आराम और असुविधा जैसी तमाम बातों को दरकिनार कर इन बातों पर ध्यान केन्द्रित किया जाने लगता है कि किस तरह बाजार की नजर से उसे तैयार किया जाए कि बाजार को वह पसन्द आ सके-बाजार में वह बिक सके। नायिका अपनी इसी दौर के अनुभव बताती है- 'मैं बनारसी साड़ी पहने, बनारसी ब्लाउज, वह भी मम्मी का, जिसे मैंने बगल से सीकर लगभग अपने नाप करके पहना था और इसी वजह से वह 'लो नेक' का लग रहा था। कलाइयों में सोने की चेन, कान में बुंदे, होठों पर लिपिस्टिक, चेहरे पर कुछ मेकअप पोते, ढाक की तरह मंदिर में जाकर खड़ी हो गई थी।'

शादी की यह पहली रस्म ही उसके वजूद के लिए सबसे बड़ा झटका होता है जब पुरुष उसके अस्तित्व पर अपना अधिकार और अपनी निरंकुश उपस्थिति दर्ज कराने के लिए कभी प्यार के नाम पर और कभी रिवाज के नाम पर उसके नाम और पहचान को बदलना चाहता है। इसी बदली परिस्थितियों में अपनी एकमात्र पहचान और नाम तक को खो देने की जिलात से जूझ रही 'उपस्थिति' की नायिका का आत्ममंथन उसके अपने अस्तित्व की खोज के लिए उसके दर्द को उकेर देता है। 'सिमरन' नाम है मेरा। 'सिमरन' नाम नहीं है मेरा। 'सिमरन' बुलाओ तो लगता है किसी और को आवाज दे रहे हैं। कई बार मैंने खुद को बुलाकर देखा है। 'सिमरन' 'सिमरन' कहकर, आवाज देकर कई बार अकेले में मैंने अभ्यास भी किया है। इसे कागज पर लिखकर पानी के साथ निगला भी था, फिर भी यह भीतर नहीं गया। भीतर का दरवाजा सँकरा है। यह नाम उससे टकराकर बाहर गिर जाता है।'

नई जगह नए लोग और उसपर खुद के लिए भी अजनबीपन का बोध--क्या यह स्त्री के जीवन को दुर्धर्ष संग्राम पूर्ण बना देने के लिए काफी नहीं है जहां दूसरों को पाना है, जीतना है वहीं खुद को भी पुनः सिरजते हुए, खोए हुए को खोजना भी है या फिर पुराने को मार कर नए को जिलाना है। पर यह शब्दों में प्रकट कर देना जितना आसान है, जीना और कर दिखाना उतना ही मुश्किल। अल्पना मिश्र की नारी घुटती है पिसती है- अन्तर्मुखी है- खुद में अत्यन्त मुखर फिर भी शांत



निर्विकार और सबसे मुख्य बात कि वह कभी विरोध नहीं करती। पर वह विरोध नहीं करती इसका भी कारण है कि वह जानती है विरोध करने का कोई लाभ नहीं है। वह पत्थर नहीं है। वह समझ सकती है- “काबेरी नाम था, माँ-बाप का दिया। शादी के बाद पूजा करवाकर मेरा नाम बदल दिया गया। सिमरना मेरी सर्टिफिकेट नहीं बदली गई। मेरा कोई सामान नहीं बदला गया। सोफा को कुछ और नहीं कहा गया। पलंग, चादरें, साड़ी...सब कुछ का नाम वही रहा। मेरा नहीं रहा।” और समझते हुए भी वह अपनी मृत्यु का मानो शोक मनाती है पर विरोध नहीं करती। वह डिप्रेस्ड है। परन्तु इस अवस्था में अपनी अन्तर्मुखी वाचलता में भी वह महसूस करती है - “अचानक एक दिन, कोई काम आ पड़ेगा। अपना सर्टिफिकेट निकालेंगी लड़की और भौंचक रह जाएगी कि वहाँ अभी तक उसका आप धड़क रहा है-एक नाम, जो अब तक उसकी नसों में बहता चला जा रहा है। एक नाम, जो मर ही नहीं सकता।”

अल्पना मिश्र की नारी सर्वथा अकेली हैं, अपने ही दुख दर्द के सम्पूर्ण युग को खुद में समेटे हुए जहान में वह पुरुष को बहुत पीछे छोड़ आई हैं। वे संसार में सिर्फ आत्मा रूप में हैं- शरीर रूप में वे बस अपनी-अपनी भूमिकाओं का निर्वाह कर रही हैं परन्तु वह भी बड़े ही आभ्यन्तरीय स्तर पर -वाचालता का नामोनिशान नहीं -क्योंकि अगर वाचालता होती तो यह एकरसता नहीं होती-दर्द का रंग इतना स्याह न होता और उससे भी बड़ी बात कि पुरुष होते तो फिर स्त्री इतनी मुखर न होती। वह

मुखर है क्योंकि पुरुषों से अलग एकांत में मानो अपनी सहेलियों से मिल रही है-बेहिचक बतिया रही है परन्तु ज्योंही कोई पुरुष आता है- वह चुप हो जाती है और अपने खोखल में कहीं भीतर छुप जाती है। पुरुष के इस संसार में स्त्री अकेली रहने के लिए अभिशप्त-सी है तभी तो भय कहानी में गर्भपात के भय से नायिका अकेली जूझती है। वह पूरी कहानी में अपने अकेलेपन का जिक्र करती है पर अपने पति जैसे नाम के किसी साथी का नहीं।

शादी स्त्री के अस्तित्व से जुड़ी एवं स्त्री की जिंदगी को एक गंभीर मोड़ देनेवाली कड़ी बन जाती है- शादी के बाद स्त्री वह हो जाती है जो शायद कभी वह होती नहीं या होना नहीं चाहती--सबसे पहली बात कि वह नंगी कर दी जाती है-जिंदगी भर जिस लाज को बचाए रखने की उसे शिक्षा दी जाती है- “जहाँ लड़कियां हों, मेरी कोशिश होनी चाहिए कि वहीं रहूँ (सिखाया गया पाठ)। बस में बैठो तो पहले ध्यान से देख लो कोई महिला यात्री है या नहीं? ट्रेन में चढ़ो तो कोशिश करो लेडीज कंपार्टमेंट में बैठने की। जगह नहीं मिली तो कहीं और सही, पर लेडीज की बगल में। बच्चे के बगल में चलेगा।” जहां पुरुष के स्पर्श से भी बचना होता है- वहीं शादी के बाद उसे एक अनदेखे अन्जाने पुरुष के कब्जे में छोड़ दिया जाता है कुछ भी कर सकने के लिए। यह वह पहली दुर्गति होती है जब स्त्री अपने ही अपमान में कुचली हुई खुद में टूटती है और उतनी ही अकेली हो जाती है। अपने ही परिवारवालों से मिला



धोखा और अपमान उसे अविश्वास से भर देता है। वह सोचती है-“पूरा नंगा होना कौन बर्दाश्त करेगा? मुझसे भी नहीं होता। मन करता खुद पर्दा बन जाऊँ। पर्दा पकड़कर खड़ी हो जाऊँ। क्या करूँ कि पर्दा, पर्दा हो जाए।“ उसका यह दर्द इसलिए है कि पुरुष उसकी जरूरतों को तवज्जो नहीं देता और जब वह मुँह खोलकर कहना चाहती है- समझाना चाहती है कि-“दरवाजे की जगह पर्दे थे।...ठीक बीच के कमरे के सामने। मैं रात-भर सो न पाती। रात को जब सोने के लिए वह आते तो मैं डर से काँपने लगती। डरते-डरते कई बार मैंने कहना भी चाहा, पर वे सुनने के मुड में नहीं होते। ‘थका हूँ, बाद में बताना’ वे कहते। वह ‘बाद’ नहीं आता।“ वह लाज जो स्त्री का गहना है उसी को दाँव पर लगा दिया जाता है, सिर्फ पति के सामने ही नहीं बल्कि पूरे घर के सामने-उसे नंगा किया जाता है-बीच में सिर्फ एक पर्दा है जो कब उड़ जाता और कब कोई सामने आ जाता यह विचार उसे भीतर तक भयभीत करती रहती है परन्तु एक पुरुष उसकी इस भावना को दर किनार कर उसमें ‘कुछ बूढ़ रहे होते’ और उसकी आंखें पर्दे पर लगी रहती-“देवर बड़े हैं, किसी भी वक्त इधर से निकल सकते हैं। हे प्रभु! ऐसा कोई भी वक्त आने के पहले मैं मर क्यों न जाऊँ।“

पुरुष अपनी हर इच्छा पूरी करता चलता है-स्त्रियों की जरूरतें उसके लिए वह इंतजार होती है जिसका वक्त कभी नहीं आता-काम चलाऊ ढंग पर दर्दा चलता रहता है परन्तु सिमरन या काबेरी अपनी ही नजरों

में हर दिन नंगी होकर गिरती चली जाती हैं। कौन-सा हरजाना भरने की बात सिखलाई गई थी-क्या अब माता-पिता भरते हैं हरजाना? क्या यह नहीं है काँटा-जो रात-दिन नायिका को चुभा करता है। क्या स्त्री का हर रात अपमान-अपमान नहीं है-बल्कि समाज की नजर में शादी का यही सर्वथा उचित मूल्य है जो पुरुष उसे भीख में देता रहता है। और जिसके लिए एक लड़की के माता-पिता सदैव लड़के वालों के प्रति कृतज्ञ रहते हैं। वह स्वीकार करती है कि पुरुष के नाम से जरूरत अधिक जरूरत लगती है। स्त्री की जरूरत कोई जरूरत नहीं है। और खुद स्त्री भी ऐसा मानने लग जाती है क्योंकि सभी ऐसा ही मानते हैं।

लड़कियों को बचपन से ही सेक्स और प्रेम को लेकर इतनी पट्टियाँ पढ़ाई जाती हैं कि लड़की या तो प्रेम जैसे शब्द से दूर भागती रह जाती है या अगर कभी इस रास्ते पर पड़ गई तो संस्कारों और अपने दिल के दो पाटों के बीच फंसी वह छटपटाती रह जाती है। विनय का एक चुम्बन- और ‘भय’ की नायिका अपने तमाम संस्कारों में कैद-हिंदी फिल्मों में प्रेमिकाओं के ज्वलन्त उदाहरण और उसके अपने ही घर में खून की नदी सी बहती उसकी दीदी की दुर्दशा--क्या वास्तव में प्रेम यही था-परन्तु नायिका प्रेम को एक अलग तरीके से महसूस करती है, जो बहुत ही कोमल और भावपूर्ण है। हर पल हर दिन एक भय जो उसे संस्कारों के मिस उसकी रगों में ढाला गया था-प्रेम मानो एक हौवा था जिससे पल-पल दूर रहने की चेतावनी दी गई थी-परन्तु प्यार का वह एक



क्षण जब अत्यन्त भाव से विनय उसका हाथ पकड़ता है, वह पिघल जाती है, चट्टान सदृश उसके संस्कार प्यार की एक लहर में तिनके की तरह बह जाते हैं। वह प्यार में बहने का सुख लूटना चाहती है कि तभी संस्कार झपटते हैं-“देखा प्रेम का नतीजा... कभी जूली आ रही है, कभी गौतम बुद्ध, कभी पद्मिनी कोल्हापुरे की रोती हुई आँखें.. सब चिल्ला रहे हैं-लड़की तू भूल रही है। इतनी जल्दी भूल गई तू? यही है वह क्षण जिससे बचना है। ये नशा है-इसका अनुभव मत करा बर्बाद हो जाएगी लड़की तू...“ दीदी का जीवन और शादी के बाद का उसका अस्तित्वहीन चेहरा नायिका को जड़ कर देता है, संस्कारों में लिप्त आप्त वाक्य उसे प्रमाणित करते से दिखाई देते हैं-विनय का चुम्बन उसे भीतर तक हिला देता है-शरीरी प्रेम-वह समझ जाती है कि प्रेम का आकर्षण शरीर पर खत्म होता है और तब स्त्री की दुर्गति के आसार शुरू होते हैं। प्रेम वह आकर्षण एवं भुलावा है जो अंततः उसकी अभिशप्त नियति बन जाता है वरना क्या कारण है कि जो प्रेम पुरुष को आजीवन आनंद

प्रदान कर सकता है वही स्त्री को विभिन्न तरह के दर्द देता है। क्या मातृत्व मात्र दर्द और वेदना नहीं उसके लिए जो उसके लिए बंधन बन जाता है। विनय के होठों को उसके अपने होठों पर रखने से एकाएक ही वह वितृष्णा से भर उठती है-“तेज बासी महक! घृणा की एक लहर पैरों से उठकर मेरे समूचे अस्तित्व को हिला रही थी। मेरे हाथों ने उसे परे धकेल दिया और भागकर मैं नाली पर आई। नाली में अभी भी खून की एक परत झलक रही थी या वह भ्रम था मेरा? मैंने अपना हाथ चेहरे का पसीना पोंछने के लिए चेहरे पर फिराया तो लगा कि खून मेरे चेहरे पर चिपक गया है। अचानक जोर की उल्टी आई-“
- यही वह क्षण है जब पुरुष स्त्री के जीवन में आता है-परन्तु वह उसे पा नहीं सकती बल्कि उसके द्वारा पाई जा सकती है-खुद सर्वथा अकेली ही रह जाती है अपने दर्द के साथ अपने दर्द को झेलती हुई। और यह नायिका की नियति है उसकी दीदी की नियति है-काबेरी सिमरन प्रतिमा और सम्पूर्ण स्त्री जाति की नियति है।

डॉ. मीनाक्षी जयप्रकाश सिंह, ईमेल – minihope123@gmail.com, Mob – 7003901646, पता – डी – 286 ट्रेचिंग ग्राउंड रोड, गार्डेनरिच, कोलकाता – 700024